इकाई 19 रोजगार ढाँचा

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 अर्थव्यवस्था का ढाँचा
19.3 रोज़गार का क्षेत्रीय वितरण
19.4 श्रमशक्ति का पुनर्गठन
19.5 रोज़गार की वृद्धि-दर
19.6 रोज़गार नीति
19.7 भविष्य के लिए नीति संबंधी योजना
19.8 सारांश
19.9 शब्दावली
19.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

19.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे :

- आर्थिक और रोज़गार ढाँचे की अवधारणा;
- भारत में श्रमशक्ति का पुनर्गठन;
- रोज़गार की वृद्धि-दर; तथा
- भविष्य के लिए कार्यसूची।

19.1 प्रस्तावना

किसी देश की राष्ट्रीय आय वहाँ उपलब्ध भौतिक, मानविक और प्रौद्योगिकी संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता पर निर्भर होती है। मानव श्रम इनमें से एक महत्त्वपूर्ण उत्पादक संसाधन है। मनुष्य आर्थिक विकास में हिस्सा भी लेता है और इसका लाभ भी उसे ही मिलता है। श्रमशक्ति में सभी सक्रिय, कार्यरत (रोज़गार प्राप्त) और "कार्य के लिए उपलब्ध या जरूरतमंद" लोग शामिल होते हैं। श्रमशक्ति का आकार और संघटन जनसंख्या के परिवर्तनशील कारकों (जैसे जन्मदर, मृत्युदर, लिंग संघटन, आयु-ढाँचे और प्रवास) और श्रमशक्ति भागीदारी दरों से निर्धारित होता है। श्रमशक्ति की गुणवत्ता निम्नलिखित कारकों से निर्धारित होती है।

- स्वास्थ्य
- पोषण
- शिक्षा
- प्रशिक्षण और कौशल निर्माण
- प्रौद्योगिकी

शिक्षा जैसे कुछ कारक जनसंख्या संबंधी परिवर्तनशील कारकों को भी प्रभावित करते हैं। अन्य चीजों के समान रहने पर, श्रमशक्ति में जनसंख्या का अनुपात जितना ज्यादा होगा, यह जितना कौशलयुक्त और स्वस्थ होगा, देश उतना ही समृद्ध होगा। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि श्रमशक्ति की भागीदारी बढ़ने से हमेशा देश समृद्ध होता है। विकास के एक खास चरण के बाद यह स्थिर हो सकता है या यहाँ तक कि इसमें गिरावट भी आ सकती है।

आमतौर पर श्रम की माँग (रोज़गार स्तर) अर्थव्यवस्था की वृद्धिदर, उत्पत्ति के साधनों की सापेक्षिक कीमतों के ढाँचे, सामानों और सेवाओं की माँग का स्वरूप और अपनाई गई प्रौद्योगिकी की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। विभिन्न उद्यमों में अपनाई गई प्रौद्योगिकी (पूंजीगत या श्रमगत) से रोज़गार की लोच प्रभावित होती है। उत्पादन की वृद्धिदर में परिवर्तन के फलस्वरूप रोज़गार की वृद्धिदर में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन को रोज़गार की लोच के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए यदि रोज़गार लोच 0.35 है तो इसका मतलब यह हुआ कि सकल घरेलू उत्पाद में 1 प्रतिशत बढ़ोतरी से रोज़गार में 0.35 प्रतिशत की वृद्धि होगी। रोज़गार लोच में गिरावट आने से कम रोज़गार पैदा होता है। हालाँकि 1.00 या इससे अधिक अंकवाली रोज़गार लोच हमेशा लाभदायक नहीं होती क्योंकि इससे कम उत्पादक वाला रोज़गार प्रतिबिंबित होता है।

आदर्शतः भारतीय माहौल में 'सभी क्षेत्रों' में लोच की दर 0.5 से 0.6 तक रहना चाहिए।

19.2 अर्थव्यवस्था का ढाँचा

खंड 1 में हमने देखा कि राष्ट्रीय आय में विभिन्न क्षेत्रों की हिस्सेदारी की दृष्टि से अर्थव्यवस्था को तीन प्रमुख क्षेत्रों में बाँटा गया है :

- प्राथमिक क्षेत्र
- द्वितीयक क्षेत्र
- तृतीयक या सेवा क्षेत्र

प्राथमिक क्षेत्र का संबंध कृषि, वानिकी और मछली-पालन जैसे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से है। द्वितीयक क्षेत्र का संबंध विनिर्मित उत्पादन तथा खनन से है। इसमें संगठित और असंगठित क्षेत्रों में होने वाले उत्पादन को शामिल किया जाता है। सेवा क्षेत्र में व्यापार, परिवहन और संचार जैसी विभिन्न प्रकार की सेवाओं, वित्तीय और बैंकिंग सेवाओं के प्रावधान, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी सामुदायिक सेवाएँ, सार्वजनिक और व्यक्तिगत सेवाओं से है।

भारत में 1950-51 में प्राथमिक क्षेत्र की सकल घरेलु उत्पाद (GDP) में हिस्सेदारी 55.3 प्रतिशत थी जो 1970-71 में घटकर 44.5 प्रतिशत और 1999-00 में 25.2 प्रतिशत रह गई। प्राथमिक क्षेत्र में कृषि का योगदान (लगभग 90 प्रतिशत) सबसे ज्यादा है। 1950-51 में इसकी हिस्सेदारी 48.6 प्रतिशत थी जो 1970-71 में घटकर 39.7 प्रतिशत और 1999-00 में 23.2 प्रतिशत रह गई। द्वितीयक क्षेत्र की हिस्सेदारी में बढ़ोतरी हुई। 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद में इसकी हिस्सेदारी 16.1 प्रतिशत थी जो 1999-00 में बढ़कर 27 प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार तृतीयक क्षेत्र की हिस्सेदारी 1950-51 में 28.5 प्रतिशत से बढ़कर 1999-00 में 47.8 प्रतिशत हो गई। राष्ट्रीय आय के संगठन में यह ढाँचागत परिवर्तन योजनाओं के दौरान शुरू की गई आर्थिक वृद्धि की प्रक्रियाओं का परिणाम था। फिशर क्लॉर्क सिद्धांत भी यह बताता है कि जैसे-जैसे आर्थिक विकास होता जाता है वैसे-वैसे

रोज़गार और आय में प्राथमिक क्षेत्र की हिस्सेदारी अपेक्षाकृत कम होती है जबकि द्वितीयक और सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी बढ़ती है।

परंतु सकल घरेलू उत्पाद के बदलते ढाँचे के अनुरूप श्रमशक्ति के ढाँचे में परिवर्तन नहीं हुआ। यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की हिस्सेदारी घटकर रह गई, इसके बावजूद श्रम शक्ति का लगभग दो तिहाई हिस्सा (64.7 प्रतिशत) अभी भी खेती के काम में लगा हुआ है। रोज़गार में कृषि के लगातार वर्चस्व के कुछ महत्त्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं :

1) उत्पादक क्षेत्र द्वारा पूंजीसघन और श्रम बचत करने वाली प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल और परिणामस्वरूप उत्पादक क्षेत्र द्वारा श्रम को खपाने की असमर्थता।

2) भारत में कुल जनसंख्या की तुलना में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात 1991 में 74.6 प्रतिशत था जबकि रूस में 26 प्रतिशत, अमेरिका में 24 प्रतिशत, जापान में 23 प्रतिशत और इंग्लैण्ड में 11 प्रतिशत था। ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि गतिविधियों की कमी के कारण अकुशल ग्रामीण जनता ने मजबूरी में कृषि को रोज़गार के रूप में अपना लिया है।

3) श्रम-आधिक्य-अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास की असफलता के कारण गैर कृषि क्षेत्रों में अधिक श्रम को खपाया नहीं जा सका।

50 वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद में विनिर्मित उद्योगों और सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी में हुए परिवर्तन की तुलना में सेवाओं और उद्योग में लगी श्रम शक्ति का अनुपात काफी कम है। उत्पादन के क्षेत्र में भारी निवेश के बावजूद द्वितीयक क्षेत्र में श्रमिकों का प्रतिशत 1951 में 10.7 प्रतिशत से थोड़ा बढ़कर 1991 में 12.7 प्रतिशत हो सका। इसी प्रकार सेवा क्षेत्र में भी 1951 में 17.2 प्रतिशत से 1991 में 20.5 प्रतिशत की मामूली वृद्धि हुई।

अतः मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि 1951 से लेकर आजतक अर्थव्यवस्था में प्राथमिक से द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में श्रमशक्ति का स्पष्ट प्रवेश नहीं हो सका। अगर हम सिद्धांत को स्वीकार कर लें कि श्रमशक्ति के प्राथमिक से द्वितीयक और अन्ततः तृतीयक क्षेत्रों में प्रवेश विकास का सूचक है तो यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत आर्थिक प्रगति की राह पर नहीं है।

तालिका 19.1

सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सेदारी

प्रतिशत

	1951	1970-71	1980-81	1995
I प्राथमिक क्षेत्र	55.3	44.5	38.1	27.8
कृषि	48.6	39.7	34.7	
II द्वितीयक क्षेत्र	16.1	23.6	25.9	31.1
III तृतीयक क्षेत्र	28.5	31.9	36.0	41.2

स्रोत : 1) भारतीय अर्थशास्त्र, रुद्रदत्त, 1996

2) एशियाई विकास दृष्टिकोण 1996, 1997, एशियाई विकास बैंक

तालिका 19.2

क्षेत्रवार श्रमिकों का वितरण (प्रतिशत में)

	1951	1961	1971	1981	1991	1983-94
प्राथमिक क्षेत्र	72.1	71.8	72.1	68.8	66.8	64.7
द्वितीयक क्षेत्र	10.7	12.2	11.2	13.5	12.7	14.8
तृतीयक क्षेत्र	17.2	16.0	16.7	17.7	20.5	20.5

स्रोत: i) भारतीय अर्थव्यवस्था, रुद्र दत्त, 1996 से उद्धृत

ii) 1993-94 का आंकड़ा इंडियन जरनल ऑफ लेबर इकोनोमिक्स, वर्ष 39 अंक 4, 1996 में संकलित प्रविन बिसारिया के लेख, स्ट्रक्चर ऑफ वर्कफोर्स से उद्धृत।

बोध प्रश्न 1

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

1) आय की माँग उत्पादन से स्वतंत्र होती है। (सही/गलत)

2) सकल घरेलू उत्पाद के ढाँचे में परिवर्तन होने से रोज़गार के ढाँचे में परिवर्तन हुआ है। (सही/गलत)

3) जनसंख्या के परिवर्तन कारकों और श्रमशक्ति भागीदारी दर से श्रम शक्ति का आकार निर्धारित होता है। (सही/गलत)

19.3 रोज़गार का क्षेत्रीय वितरण

श्रम की माँग व्युत्पादित होती है। विभिन्न क्षेत्रों में रोज़गार की वृद्धि और वितरण उत्पादन की वृद्धि और उसके वितरण पर निर्भर होता है। किसी अवधि में श्रम शक्ति पुनर्गठन की प्रक्रिया निम्नलिखित कारकों में परिवर्तन पर निर्भर करती है :

- माँग के स्वरूप अर्थात् उपभोग की जाने वाली वस्तुएँ और सेवाएँ
- प्रौद्योगिकी
- उत्पादकता

जैसे-जैसे विकास होता जाता है वैसे-वैसे प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती जाती है। एंजेल के नियम के अनुसार जैसे ही प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है वैसे ही लोग दूध जैसे उत्कृष्ट भोजन की माँग करने लगते हैं; उसके बाद कपड़े जैसी बनी बनाई उपभोक्ता वस्तुओं की माँग करने लगते हैं। उपभोक्ता पद्धति के इस परिवर्तन से उत्पादन के ढाँचे में भी साथ-साथ परिवर्तन होने लगता है। जैसे ही जनसंख्या में मध्यम आय वर्ग की प्रति व्यक्ति आय का स्तर ऊपर उठता है तैयार उपभोक्ता वस्तुओं की माँग की वृद्धिदर अपनी चरम सीमा पर होती है। इसके बाद उच्च आय दर समूह के परिवार के लोग अपनी आय में से सेवाओं पर अपेक्षाकृत ज्यादा खर्च करने लगते हैं।

प्रौद्योगिकी परिवर्तनों से आमतौर पर और खासकर उद्योगों में रोज़गार की वृद्धि प्रभावित होती है। कई बार प्रौद्योगिकी का चयन शुद्ध रूप से उत्पादन के प्रौद्योगिकी कारकों से नियंत्रित होता है। परंतु अधिकांश मामलों में न्यूनतम मजदूरी के रूप में श्रम बाजार में कई

प्रकार की असंगतियाँ पैदा हो जाती हैं और पूँजी में उपयोग के लिए विभिन्न रियायतों से श्रम की तुलना में पूँजी की कीमत मूल्य कम हो जाती है। जिसके फलस्वरूप नियोक्ता या सेवायोजक मजदूरी और श्रम बचाने की प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल करने लगता है। इसके परिणामस्वरूप विकासशील देशों में स्थानीय रूप से काफी मजदूर बेरोज़गार हो जाते हैं।

जन्म-दर और मृत्यु-दर, आयु ढाँचा, श्रमशक्ति, भागीदारी दर आदि आपूर्ति कारक भी बेरोज़गारी, प्रछन्न बेरोज़गारी और कम रोज़गारी को प्रभावित करते हैं। यदि रोज़गार की वृद्धि-दर से श्रमशक्ति की वृद्धि-दर ज्यादा होती है तो और भी लोग बेरोज़गार हो जाते हैं। चूँकि गरीब लोग बेरोज़गारी का बोझ सहन नहीं कर सकते इसलिए उनके पास कृषि क्षेत्र में जाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं रह जाता।

इस प्रकार श्रमशक्ति में तेजी से वृद्धि होने से कृषि क्षेत्र में पुनर्गठन की प्रक्रिया धीमी हो जाती है।

19.4 श्रमशक्ति का पुनर्गठन

हमारे पास निम्नलिखित दो स्रोतों से रोज़गार के बारे में व्यापक आँकड़े मिलते हैं :

i) जनसंख्या गणना

ii) राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन से प्राप्त आँकड़े अधिक विश्वसनीय और व्यवस्थित हैं क्योंकि सर्वेक्षण के विभिन्न दौर में विभिन्न अवधारणाओं की परिभाषाएँ एक रही हैं। अतः तुलना भी की जा सकती है और व्यापक रूप में इनका उपयोग भी किया जा सकता है। जनगणना में ग्रामीण और शहरी आधार पर कामगारों का वर्गीकरण किया गया है। 1991 की जनगणना से पता चलता है कि 31.4 करोड़ मज़दूरों में ग्रामीण मज़दूरों की संख्या 24.9 करोड़ है (79 प्रतिशत) और मज़दूरों की संख्या 6.5 करोड़ (21 प्रतिशत) है।

निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्यरत मज़दूरों के आधार पर श्रम शक्ति के पुनर्गठन का अध्ययन किया जा सकता है।

क) कृषीय और गैर-कृषीय क्षेत्र

ख) संगठित और असंगठित क्षेत्र

ग) मजदूरी और स्वरोज़गार

क) कृषीय और गैर-कृषीय क्षेत्र

कृषि से गैर-कृषि क्षेत्र में श्रमशक्ति के आनुपातिक परिवर्तन के आधार पर 1951-52 से 1993-94 की सम्पूर्ण अवधि को दो उप-अवधियों में विभाजित किया जा सकता है :

i) 1951-52 से 1971-72 ii) 1972-73 से 1993-94

i) 1951-52 से 1971-72 : 1970 तक श्रम शक्ति ढाँचे में कोई स्पष्ट प्रवृत्ति उभरती हुई दिखाई नहीं देती। कृषि क्षेत्र में काम करने वाले लोगों का प्रतिशत 1961 में 71.8 से बढ़कर 1971 में 72.1 प्रतिशत हो गया था। कृषि मज़दूरों का प्रतिशत 1961 में 16.7 था जो बढ़कर 1971 में 26.3 प्रतिशत हो गया। कृषि श्रमिकों की संख्या में यह वृद्धि स्वरोज़गार कृषकों की

संख्या में कमी का परिणाम था। इस प्रकार प्राथमिक क्षेत्र में 1951 से लेकर 1971 के बीच श्रमशक्ति 72 प्रतिशत पर स्थिर थी। कृषि क्षेत्र के बाहर रोज़गार अवसरों में कोई खास वृद्धि न होने से मजदूर कृषि क्षेत्र में कार्य करने लगे। कृषि योग्य जोतें कुछ लोगों के हाथ में सिमटने लगीं और, छोटे तथा सीमांत किसान कृषि मजदूर के रूप में काम करने लगे।

ii) 1972-73 से 1993-94 : 1961 के स्तर की तुलना में 1981 तक श्रम शक्ति के पुनर्गठन में सुधार आया। कृषि में काम करने वाले लोगों का प्रतिशत 1971 में 72.1 प्रतिशत था जो 1981 में घटकर 68.8 प्रतिशत हो गया। निर्माण क्षेत्र में 1971 में इसका प्रतिशत 11.2 था जो 1981 में बढ़कर 13.5 प्रतिशत हो गया। सेवा क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के प्रतिशत में थोड़ी बहुत वृद्धि हुई और 1981 में यह 17.7 प्रतिशत हो गया।

1980 के दशक में श्रमशक्ति में विविधता की प्रक्रिया को एक धक्का लगा। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में श्रम शक्ति में निर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी में कमी आई। शहरी क्षेत्रों में परिवहन, भंडारण और संचार जैसे क्षेत्रों में भी श्रमशक्ति की हिस्सेदारी कम हुई। इसके परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में गैर कृषि क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों का प्रतिशत कम हो गया। ग्रामीण क्षेत्रों में भी कृषि मज़दूरों के अनुपात में पर्याप्त कमी हुई। जिन मज़दूरों को अन्य क्षेत्रों में कोई उत्पादक रोज़गार नहीं मिला उन्हें ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के तृतीयक क्षेत्र में जगह मिली।

1993-94 में किए गए राष्ट्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से यह पता चलता है कि उदारीकरण के बाद स्थिति और भी बिगड़ गई है। अगर पूरी अर्थव्यवस्था को देखें तो कृषि में श्रमशक्ति की हिस्सेदारी बढ़ी और गैर कृषि क्षेत्रों में घटी है। ग्रामीण क्षेत्रों पर फिर से दबाव बढ़ने लगा है। 1987-88 से लेकर 1993-94 के बीच गैर-कृषि क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों से कृषि क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों की संख्या 3 गुनी ज्यादा थी। 1980 और 90 के दशकों में उद्योगों में प्रयुक्त तकनीक पूँजी सघन थी इसलिए रोज़गार सृजन की क्षमता दर में आनुपातिक वृद्धि न हो सकी।

ख) संगठित और असंगठित क्षेत्र

आइए पहले संगठित और असंगठित क्षेत्र की अवधारणा समझ लें। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार असंगठित क्षेत्र में वे सभी संगठन और घरेलू उद्योग (संगठित उद्योगों को छोड़कर) शामिल होते हैं जो किसी कानून से नियंत्रित नहीं होते और जो वार्षिक लेखा-जोखा या संतुलन पत्र नहीं बनाते। संगठित क्षेत्र के अंतर्गत ऐसे नैगमिक और अर्द्ध नैगमिक उपक्रम आते हैं जो संतुलन पत्र बनाते हैं तथा प्रशासनिक नियमों के अनुसार काम करते हैं। चैम्बर ऑफ कॉमर्स, व्यापार संगठन आदि जैसे मुनाफा रहित निजी संस्थान भी इस श्रेणी में आते हैं।

भारत के रोज़गार ढाँचे की प्रमुख विशेषता इसकी आधुनिक (संगठित) और अनौपचारिक (असंगठित) दोनों क्षेत्रों में एक साथ उपस्थिति है। व्यापक पैमाने पर उत्पादन, आधुनिक प्रौद्योगिकियों का उपयोग, गैर प्रतियोगी उत्पाद और मज़दूरों को अधिक मजदूरी आधुनिक क्षेत्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इसी प्रकार छोटे पैमाने पर उत्पादन, कम पूँजी, सघन और अल्प प्रतियोगिता, ठेके की मजदूरी, महिलाओं की ज्यादा भरती आदि असंगठित क्षेत्र की खास विशेषताएँ हैं। इस प्रकार असंगठित क्षेत्र में वृद्धि रोज़गार की खराब स्थिति का सूचक है।

1991 की जनगणना के अनुसार संगठित क्षेत्र में मात्र 9.4 प्रतिशत मजदूर काम करते थे जबकि असंगठित क्षेत्र में 90.6 प्रतिशत श्रमिक लगे हुए थे। असंगठित मज़दूरों की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : कार्य स्थलों का बिखरापन, संगठन का अभाव, नियोक्ता-कर्मचारी

के बीच ठोस संबंध का अभाव, अल्प रोज़गार की अधिकता, घरेलू काम की अधिकता आदि। कृषि मजदूर, कुटीर और रेशम उद्योग जैसे गैर कृषि कामों में लगे गाँव के श्रमिक, बीड़ी बनाने वाले, निर्माण कार्यों में लगे लोग, घरेलू नौकर, आदि असंगठित क्षेत्र में ही शामिल होते हैं।

हालाँकि रोज़गार में संगठित और असंगठित क्षेत्रों की हिस्सेदारी काफी समय तक लगभग स्थिर रही है, परंतु कुछ क्षेत्रों में असंगठित क्षेत्रों की हिस्सेदारी काफी तेजी से बढ़ी है। कृषि, वानिकी, मछली पालन और बागवानी में कुल मिलाकर 99.2 प्रतिशत, उद्योगों में 75 प्रतिशत, निर्माण कार्यों में 78 प्रतिशत, वाणिज्य और व्यापार में 98 प्रतिशत; तथा परिवहन, भंडारण और संचार में 61 प्रतिशत मज़दूर असंगठित क्षेत्र में कार्य करते हैं।

ग) मजदूरी रोज़गार और स्वरोज़गार

स्वरोज़गार का हिस्सा 1972-73 में 61.44 प्रतिशत था जो 1993-94 में घटकर 54.8 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार स्थाई रोज़गार में भी कमी आई। 1972-73 में यह 15.4 प्रतिशत था जो 1993-94 में 13.2 प्रतिशत रह गया। परंतु इस बीच आकस्मिक रोज़गार में वृद्धि हुई। 1972-73 में यह 23.2 प्रतिशत था जो 1993-94 में बढ़कर 32 प्रतिशत हो गया। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोज़गार में आई कमी और शहरी क्षेत्रों में नियमित मजदूरी की कमी के कारण आकस्मिक मज़दूरों के अनुपात में वृद्धि हुई। महिला मज़दूरों की अपेक्षा पुरुष मज़दूरों की संख्या आकस्मिक मज़दूरों के रूप में ज्यादा बढ़ी। आकस्मिक रोज़गार की बढ़ती हिस्सेदारी रोज़गार की गुणवत्ता में आई गिरावट को अभिव्यक्त करता है।

तालिका-19.3

स्वरोज़गार और मजदूरी रोज़गार के रूप में श्रमशक्ति के ढाँचे में परिवर्तन (प्रतिशत)

श्रेणी	1972-73	1993-94
i) स्वरोज़गार मजदूर	61.4	54.8
ii) मजदूरी पर लगे श्रमिक	38.6	45.2
क) नियमित श्रमिक	15.4	13.2
ख) आकस्मिक श्रमिक	23.2	32.0

बोध प्रश्न 2

1) आर्थिक विकास होने पर वस्तु निर्माण के क्षेत्र में और सेवा क्षेत्र में रोज़गार क्यों बढ़ता है?

.....

.....

.....

.....

2) क्या आप मानते हैं कि नियमित रोज़गार की कीमत पर आकस्मिक मज़दूरों में हुई वृद्धि से रोज़गार की गुणवत्ता में कमी आती है?

.....

.....

.....

.....

3) 1980 और 90 के दशक में ग्रामीण श्रमशक्ति के अनौद्योगीकरण के क्या कारण हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

19.5 रोज़गार की वृद्धि-दर

1951 और 1990 के बीच भारत की श्रमशक्ति में 2.44 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई जबकि इसी दौरान रोज़गार वृद्धि की दर मात्र 2.20 प्रतिशत थी। 1985-92 (7 वर्ष) के दौरान श्रमशक्ति में 1.89 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई और रोज़गार 1.76 प्रतिशत की दर से बढ़ा। रोज़गार और श्रमशक्ति की वृद्धि-दर में इस अन्तराल से बेरोज़गारों की संख्या बढ़ती चली गई। इसके परिणामस्वरूप बेरोज़गारी की वृद्धि-दर 1951 में 0.21 प्रतिशत से बढ़कर 1961 में 3.6 प्रतिशत, 1980 में 4.25 प्रतिशत, 1992 में 5.33 प्रतिशत और 1995 में 5.1 प्रतिशत हो गई।

कुल मिलाकर 1951 में बेरोज़गारी 3.4 लाख थी जो 1969 में बढ़कर 52 लाख, 1985 में बढ़कर 115 लाख हो गई और 1995 में लगभग 187 लाख थी। इस प्रकार सापेक्ष एवं निरपेक्ष दोनों ही दृष्टि से बेरोज़गारी में वृद्धि हुई।

तालिका-19.4
श्रमशक्ति, रोज़गार और बेरोज़गारी

वर्ष	श्रमशक्ति (करोड़ व्यक्ति)	रोज़गार (करोड़ व्यक्ति)	बेरोज़गार (करोड़ व्यक्ति)	बेरोज़गार दर (प्रतिशत)
1951	16.201	16.167	0.034	0.21
1961	17.844	17.196	0.648	3.63
1969	20.820	20.301	0.519	2.50
1974	23.415	22.404	1.011	4.32
1980	25.634	24.475	1.150	4.32
1985	27.938	26.669	1.269	4.54
1992	31.873	30.173	17.000	5.53
1995	339.210	320.510	18.700	5.51

स्रोत : नवीं पंचवर्षीय योजना में रोज़गार नीति (प्रो. रुद्र दत्त)

1987-88 और 1993-94 के बीच महिला रोज़गार की दर में गिरावट आई और वह गिरावट ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा देखने को मिली। इस दौरान महिलाओं और पुरुषों दोनों के लिए शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर कम हुए।

विशेष रूप से संगठित क्षेत्रों में रोज़गार की वृद्धि-दर में काफी तेजी से कमी आई और यह

2.48 प्रतिशत से घटकर 1.38 प्रतिशत हो गई। हालाँकि यह गिरावट लगभग सभी क्षेत्रों में देखी गई। परंतु वस्तु निर्माण क्षेत्र में यह सबसे अधिक तीव्रता के साथ कम हुई। संगठित वस्तु निर्माण क्षेत्र में रोज़गार लगभग अवरुद्ध-सा हो गया और हाल के वर्षों में असंगठित क्षेत्र ने सबसे ज्यादा रोज़गार दिया है।

1980 के दशक के दौरान रोज़गार वृद्धि में आई गिरावट का तात्कालिक कारण कृषि, वस्तु-निर्माण क्षेत्र और सेवाओं जैसे सभी प्रमुख क्षेत्रों में रोज़गार की लोच में गिरावट था। 1970 के दशक में सकल घरेलू उत्पाद में 1 प्रतिशत की वृद्धि होने से रोज़गार में 0.61 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1980 के दशक में सकल घरेलू उत्पाद में इतने ही प्रतिशत की वृद्धि होने से रोज़गार में मात्र 0.32 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1990 के दशक में कृषि और सेवा क्षेत्रों में रोज़गार की लोच में सुधार हुआ परंतु निर्माण क्षेत्र में 1980 के दशक की स्थिति बनी रही। 80 के दशक में औद्योगिक क्षेत्र में हुए पुनर्गठन के कारण वहाँ रोज़गार की लोच में कमी आई। पूँजीगत वस्तुओं और उपभोक्ता वस्तुओं के वे भाग जिनकी निर्माण-प्रक्रिया में श्रमिकों की कम आवश्यकता होती है, वहाँ उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। इसके अलावा उत्कृष्ट और उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं के माँग के कारण भी रोज़गार में कमी आई क्योंकि इस प्रकार के उद्योगों में भी कम श्रमिकों की आवश्यकता होती है। 1990 के दशक की रोज़गार की धीमी वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि 1991-92 में सार्वजनिक और निजी निवेश की वृद्धि-दर काफी हद तक ऋणात्मक रही। इसके परिणामस्वरूप 1992-93 में सार्वजनिक सकल पूँजी निर्माण में गिरावट आई। सामाजिक क्षेत्र में सार्वजनिक खर्च में आई कमी के कारण भी रोज़गार में धीमी वृद्धि रही।

संगठित वस्तु-निर्माण क्षेत्रों में हुए तीव्र विकास और 80 और 90 के दशकों में रोज़गार वृद्धि की धीमी गति से यह पता चलता है कि सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि और रोज़गार वृद्धि की दर में कोई स्वचालित संबंध नहीं है। 1980 और 90 के दशकों में वस्तु निर्माण क्षेत्र में रोज़गार लोच में आई गिरावट का भावी रोज़गार रणनीति के लिए कई अर्थ निकलते हैं। नई औद्योगिक नीति के तहत चलाई जा रही उदारीकरण की नीतियों में बाजार की ताकतों पर बल दिया गया है। किंतु इस पर भरोसा करने से या तो ऐसा विकास होगा जिसमें रोज़गार के अवसर नहीं होंगे या ज्यादा उत्पादन तो होगा परंतु रोज़गार वृद्धि की दर धीमी होगी।

तालिका-19.5

सकल घरेलू उत्पाद एवं रोज़गार की वृद्धि-दर

	सकल घरेलू उत्पाद की सालाना वृद्धि दर (%)	रोज़गार की सालाना वृद्धि दर (%)	रोज़गार की लोच
प्रथम पंचवर्षीय योजना(1951-56)	3.6	0.39	0.11
द्वितीय योजना (1956-61)	4.2	0.85	0.20
तीसरी योजना (1961-66)	2.8	2.03	0.73
वार्षिक योजना (1967-69)	3.9	2.21	0.57
चौथी योजना (1969-74)	3.3	1.99	0.60
पाँचवीं योजना (1974-75 से 1978-79)	4.8	1.84	0.38
छठी योजना (1980-85)	5.7	1.73	0.30
सातवीं योजना (1985-90)	5.8	1.89	0.33
1990-92	3.4	1.55	0.44
1992-95	5.8	2.03	0.35

स्रोत : नवीं योजना में रोज़गार नीति, आई.ए.एम.आर दिल्ली में आयोजित गोष्ठी में प्रो. रुद्रदत्त द्वारा प्रस्तुत आलेख

19.6 रोज़गार नीति

दृष्टिकोण की प्रकृति और नीति संबंधी प्रयत्नों के आधार पर रोज़गार नीति को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है :

i) चरण I (1950 से 1970) : योजना के आरंभिक वर्षों में यह मान लिया गया कि अर्थव्यवस्था के विकास से रोज़गार में वृद्धि होगी। इस प्रकार के विकास से रोज़गार अपने आप पैदा हो जाएँगे। यह अनुमान लगाया गया कि 5 प्रतिशत के हिसाब से विकास होगा और श्रम शक्ति की वृद्धि 2 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होगी। 60 के दशक में ये दोनों ही आशाएँ ध्वस्त हो गईं। उत्पादन और रोज़गार के सीधे संबंध पर प्रश्न चिह्न लग गया।

ii) चरण II (1970 से 1980) : राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आँकड़ों के प्रकाशन के बाद यह महसूस किया गया कि विकास योजना में रोज़गार पैदा करने पर विशेष दृष्टि चाहिए। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) में रोज़गार के अवसर पैदा करना एक प्रमुख उद्देश्य था। कमजोर वर्गों को अस्थाई रूप से रोज़गार देने के लिए विशेष रोज़गार कार्यक्रम चलाए गए जिनमें से कुछ कार्यक्रम इस प्रकार थे— सीमांत किसान और कृषि मजदूर, छोटे किसान विकास एजेंसियाँ, समन्वित शुष्क भूमि विकास कार्यक्रम, कृषि सेवा केंद्र, ग्रामीण श्रम कार्यक्रम आदि।

iii) चरण III (1980 और उसके बाद) : छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के बाद से रोज़गार उत्पादन और गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य को सबसे ऊपर रखा गया। रोज़गार के अवसर पैदा करने के लिए विशेष प्रयत्न किए गए। समूह आधारित और क्षेत्र आधारित रोज़गार उत्पादन और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाए गए। व्यक्ति को केंद्र में रखने का दृष्टिकोण अपनाया गया। गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रम की विस्तृत चर्चा आगामी इकाई में की जाएगी।

19.7 भविष्य के लिए नीति संबंधी योजना

निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही दृष्टियों से बढ़ती बेरोजगारी को देखते हुए आर्थिक विकास के लिए ऐसी नीतियाँ तैयार करनी होगी जिनमें श्रमशक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया जाए। लघु/कुटीर उद्योगों के विकास, प्रौद्योगिकी का चुनाव, मानव संसाधन विकास, मानवशक्ति नियोजन, मजदूरी-नीति आदि सभी की रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। नीचे इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

उत्पादन का बदलता ढाँचा

कृषि में तेजी से वृद्धि होने से आमतौर पर कृषि और कृषि से जुड़ी अन्य गतिविधियों तथा ग्रामीण गैर-कृषि रोज़गार में तेजी से वृद्धि होती है और इससे अल्पकाल में वास्तविक मजदूरी की दर बढ़ जाती है। कृषि विकास से पूरे ग्रामीण क्षेत्र में रोज़गार के अवसर पैदा होते हैं और यह कुछ शहरी क्षेत्रों तक सीमित नहीं होता है। अधिशेष, रोज़गार और निर्यात बढ़ाने में कृषि की अहम् भूमिका होती है। इसलिए फसलों के विविधीकरण, वाणिज्यिकरण, गैर-कृषीय गतिविधियों और उद्यमों से विकास मूलक संबंध स्थापित करने पर बल देना चाहिए।

छोटे और लघु उद्योगों में श्रम को खपाने की ज्यादा क्षमता होती है। इसलिए उनके उत्पादन में वृद्धि होने से बड़े और आधुनिक उद्योगों की तुलना में अधिक रोज़गार के अवसर पैदा

होते हैं। रोज़गार के अवसर पैदा करने के लिए इन उद्योगों को बढ़ावा देना चाहिए। जिस उद्योग में रोज़गार पैदा करने की अच्छी संभावना हो जैसे कृषि आधारित या निर्माण उद्योग, उनका संबंध दूसरे क्षेत्र के उद्योगों से जोड़ने में सहायता की जानी चाहिए। ऋण-प्रबंधन, विकास और गुणवत्ता नियंत्रण के माध्यम से सहायता दी जा सकती है।

प्रौद्योगिकी का चुनाव

आधुनिकीकरण और प्रौद्योगिकी परिवर्तन करते समय रोज़गार के अवसर पैदा करने की ऐसी दूरगामी योजना बनानी चाहिए जिससे कार्य क्षमता और उत्पादकता में वृद्धि हो सके। उसी तकनीक को बढ़ावा देना चाहिए जिसमें उत्पादन के साथ-साथ रोज़गार में भी वृद्धि हो। हालाँकि आमतौर पर अनुसंधान और विकास पूँजी-प्रधान तकनीकों तक सीमित होते हैं परंतु श्रम-प्रधान तकनीकों में भी सुधार की गुंजाइश हो सकती है। श्रम-प्रधान तकनीक अपनी डिजाइन में साधारण किस्म का होता है और इसके बड़े पैमाने पर उपयोग करने से यह सस्ता भी हो सकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी दी हुई वस्तु के उत्पादन में एक-सी तकनीक का चयन करना चाहिए जिससे सामाजिक लाभ ज़्यादा हो।

मानव संसाधन विकास

रोज़गार के लिए अपेक्षित कौशल और रोज़गार खोजने वालों के कौशल में अन्तर होने से भी बेरोज़गारी की समस्या पैदा होती है। अर्थव्यवस्था में तीव्र ढाँचागत बदलाव आने से यह अनमेल और भी बिगड़ जाता है। इसलिए मध्यम और दीर्घकाल दोनों दृष्टियों से लोगों की कुशलता बढ़ाने के लिए शैक्षिक और प्रशिक्षण व्यवस्थाओं के विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एक खुलापन रखना चाहिए ताकि श्रम बाजार में होने वाले परिवर्तन के अनुसार इसमें तुरंत परिवर्तन किया जा सके। इसके अलावा गैर संगठित क्षेत्र में काम कर रहे स्वरोज़गार व्यक्तियों और मजदूरी करने वाले श्रमिकों को बड़ी संख्या में शिक्षा और प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। उनकी उत्पादकता और आय के स्तर को बढ़ाने के लिए उनकी कुशलता को बढ़ाना जरूरी है।

मानव-शक्ति नियोजन

मानव-शक्ति की कमी या अधिकता से बचने के लिए अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों, व्यवसायों और शैक्षिक/कौशलयुक्त श्रेणियों द्वारा पैदा किए जानेवाले रोज़गार के अवसरों का एक अंदाजा होना चाहिए। रोज़गार आकलन और मानव-शक्ति पूर्वानूमान मानव-शक्ति नियोजन के अंग हैं। श्रम बाजार प्रक्रियाओं पर निगरानी रखने और इसमें उभरने वाले अनमेल संबंधों का पता लगाने में मानव-शक्ति नियोजन की भूमिका अहम् है। आपूर्ति के मानदंडों के अलावा मानव संसाधन नियोजन का पूरी मानव-शक्ति नियोजन से तालमेल होना चाहिए ताकि मानव-शक्ति की माँग और आपूर्ति के बीच परस्पर सामंजस्य बना रहे।

मजदूरी नीति

पहले ही बताया जा चुका है श्रम की माँग व्युत्पन्न (derived) प्रकार की होती है। मजदूरी की दर मज़दूरों की क्रय-शक्ति की सूचक होती है जिससे वस्तुओं और सेवाओं की समग्र माँग तय होती है और फिर इसी से श्रम बाजार में श्रम की माँग का स्तर तय होता है। भारतीय परिवेश में लगभग 91 प्रतिशत श्रमशक्ति असंगठित क्षेत्र में लगी हुई है जहाँ मजदूरी कम है और काम करने की दशाएँ खराब हैं। इसलिए कानून और समुचित मजदूरी नीति मजदूरी सुरक्षा प्रदान करने में सहायक हो सकती है। इससे रोज़गार सृजन करने में मदद मिलती है।

अनुसूचित रोज़गारों में मज़दूरों के लिए तय की गई न्यूनतम मजदूरी का मौजूदा कानूनी प्रावधान अपर्याप्त है और इसे ठीक से लागू भी नहीं किया जाता। श्रमशक्ति का एक बड़ा हिस्सा अभी भी न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा निर्धारित मजदूरी की सीमा से बाहर है। वास्तविक मजदूरी और अधिनियम द्वारा तय की गई संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों के बीच एक ही प्रकार के छोटे-छोटे कामों के बदले दी जाने वाली मजदूरी दरों में काफी विषमता देखने को मिलती है। मजदूरी और वेतन के स्तर में परिवर्तन का उत्पादकता और मजदूरी से कोई संबंध नहीं है। इसलिए यह जरूरी है कि एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति बनाई जाए जो मजदूरी, वेतन स्तर और मजदूरी ढाँचे में होने वाले परिवर्तनों को तय कर सके।

जनसंख्या नीतियाँ

जनसंख्या और श्रमशक्ति में रोज़गार की तुलना में तेजी से वृद्धि हो रही है। भविष्य में बेरोज़गारी की समस्या को दूर करने के लिए जनसंख्या वृद्धि-दर में कमी लानी होगी। महिलाओं को शिक्षित करने, उनकी भागीदारी बढ़ाने के साथ-साथ जन्म-दर को नियंत्रित करने से जनसंख्या वृद्धि की दर रोकी जा सकती है।

विशेष रोज़गार कार्यक्रम

रोज़गार उन्मुख रणनीति अपनाने से पूर्ण रोज़गार का लक्ष्य दीर्घकाल में हासिल करने की उम्मीद है। गरीब और बेसहारा बेरोज़गारों और अल्प रोज़गार प्राप्त लोगों के लिए अल्प अवधि रोज़गार की योजना आवश्यक हैं। इसलिए विशेष रोज़गार कार्यक्रमों को जारी रखना चाहिए। अगली इकाई में इसपर और विस्तार से चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 3

1) प्रशिक्षण और कौशल विकास से बेरोज़गारी कम करने में कैसे मदद मिलती है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्या आप ऐसा सोचते हैं कि समुचित मजदूरी नीति श्रम खपत में एक सकारात्मक भूमिका अदा करती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) 1980 से अपनाई गई रोज़गार नीति की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

19.8 सारांश

किसी देश की राष्ट्रीय आय वहाँ लगे संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता पर निर्भर करती है। श्रमशक्ति का आकार और संगठन जनसंख्या संबंधी परिवर्तनशील कारकों और श्रमशक्ति भागीदारी दर से तय होता है। इसकी गुणवत्ता कई कारकों से निर्धारित होती है जैसे, स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, प्रशिक्षण और प्रौद्योगिकी।

भारत में सकल घरेलू उत्पाद के बदलते ढाँचे के अनुसार श्रमशक्ति के ढाँचे में परिवर्तन नहीं हुआ। 1951 से अर्थव्यवस्था के प्राथमिक से द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में श्रमशक्ति का स्पष्ट प्रवेश नहीं हो सका है। जहाँ तक माँग का सवाल है यह रोज़गार ढाँचा, वस्तुओं की माँग, प्रौद्योगिकी और उत्पादकता में हुए परिवर्तन से प्रभावित होता है। 1970 तक श्रमशक्ति ढाँचे की कोई स्पष्ट प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती। 1981 तक श्रमशक्ति की विविधता में सुधार हुआ। हालाँकि 1990 के दशक के दौरान उदारीकरण के प्रवेश से इस विविधता में गिरावट आई है। ग्रामीण क्षेत्रों में अनौद्योगिकीकरण हो रहा है। रोज़गार में असंगठित क्षेत्रों का बोलबाला है। सभी क्षेत्रों में इसकी हिस्सेदारी तेजी से बढ़ती जा रही है। शहरी क्षेत्रों में नियमित रोज़गार की कीमत पर दिहाड़ी मज़दूरों की बढ़ती संख्या रोज़गार में गुणवत्ता की गिरावट का द्योतक है।

रोज़गार और श्रमशक्ति की वृद्धि-दर में लगातार अन्तर रहने से बेरोज़गारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों दृष्टियों से बेरोज़गारी बढ़ी है। संगठित उद्योग क्षेत्र उच्च उत्पादन दर होने के बावजूद रोज़गार की वृद्धि दर कम है। इससे पता चलता है कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि होने से रोज़गार अपने आप नहीं बढ़ जाएगा। 1980 और 90 के दशकों में रोज़गार की लोच में आई गिरावट से यह पता चलता है कि नई आर्थिक नीति में बाजार पर पूरी तरह निर्भर रहने से या तो रोज़गार-विहीन वृद्धि होगी या उत्पादन की उच्च वृद्धि दर के साथ-साथ रोज़गार की वृद्धि-दर कम होगी।

19.9 शब्दावली

श्रमशक्ति : वे सभी सक्रिय लोग, जिन्हें काम मिल चुका है (रोज़गार प्राप्त) या जो काम की तलाश में हैं (बेरोज़गार)।

कार्य भागीदारी दर : श्रमशक्ति और कुल जनसंख्या के बीच के अनुपात को कार्य भागीदारी दर कहते हैं।

कामगार (या रोज़गार प्राप्त) : किसी भी लाभपूर्ण गतिविधियों में शामिल व्यक्तियों को कामगार या रोज़गार प्राप्त व्यक्ति माना जाता है।

स्वरोज़गार प्राप्त : जो लोग अपने ही खेत में काम करते हैं या दूसरा व्यवसाय करते हैं उन्हें स्वरोज़गार प्राप्त कहा जाता है।

नियमित वेतनभागी/मजदूरी : दूसरे के खेतों या व्यवसायों (घरेलू और बाहरी) में काम करने वाले और बदले में नियमित रूप से वेतन या मजदूरी पाने वाले (दिहाड़ी पर काम करने वाले लोग इसमें शामिल नहीं होते) लोगों को नियमित भोगी/मज़दूरी प्राप्त कर्मचारी माना जाता है।

आकस्मिक श्रमिक : दूसरे के खेतों या व्यवसायों में काम करने वाले और इसके बदले में दिहाड़ी या ठेके के अनुसार मजदूरी प्राप्त करने वाले आकस्मिक श्रमिक कहलाते हैं।

सामान्य दर्जा : राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण रोज़गार/बेरोज़गार के तीन प्रकार के आकलन प्रस्तुत करता है— सामान्य स्थिति, साप्ताहिक स्थिति और रोजमर्रा की स्थिति। सामान्य स्थिति में सर्वेक्षण की तिथि के पहले के 365 दिनों को संदर्भ के रूप में लिया जाता है।

19.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Employment Policy in India by Dr. D.S. Awasthi (ed.), Indian Economic Association.

Wage Employment Programmes in Rural Development by Indira Hirway, Oxford & IBH Publishing Co. (P) Ltd., New Delhi, 1986.

Trends in Poverty, Wages and employment in India by Sheila Bhalla Published in Indian Journal of Labour Economics, April-June 1997, Vol. 40, Number 2.

Asian Employment Programmes, ILO Working Papers by Mustafa Alam.

Employment Challenges for the 90s, World Employment Programme, ILO, 1990 Chapter 2, PP. 13-54.

Eighth Five Year Plan (1992-97) Vol. 1, Chapter 6, Page 116-135.

19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) गलत
2) गलत
3) सही

बोध प्रश्न 2

1) कृपया भाग 19.3 देखें
2) हाँ
3) कृपया भाग 19.5 देखें

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 19.7 – मानव संसाधन विकास
2) हाँ
3) भाग 19.6 देखें।